प्रेमचन्द के उपन्यासों में स्त्री विमर्श : एक अध्ययन

*मौसमी सिंह (तिवारी)**

लेखसार

इस आलेख में उपन्यासकार प्रेमचंद द्वारा लिखित उपन्यासों में स्त्री-विमर्श पर एक अध्ययन प्रस्तुत किया गया है। यह एक अनुसंधानमूलक आलेख है। इसमें प्रेमचंद के उपन्यासों में स्त्री विमर्श के साथ-साथ हिंदी उपन्यास में स्त्री विमर्श के आगमन पर एक संक्षिप्त ऐतिहासिक विवरण उल्लेखित है। स्त्री विमर्श का इतिहास, अवधारणा के साथ ही सिद्धांत और आगमन पर एक विवरण भी उल्लेखित है। स्त्री विमर्श रूढ़ हो चुकी मान्यताओं के प्रति असंतोष व उससे मुक्ति का स्वर है। पितृसत्तात्मक समाज के दोहरे नैतिक मापदंड, मूल्यों व अंतर्विरोधों को समझने व पहचानने की गहरी अंतर्दृष्टि है। विश्व चिंतन में यह एक नई बहस को जनम देता है। पितृसत्तात्मक पारिवारिक संरचना पर सवाल खड़ा करता है। आखिर क्यों स्त्रियाँ अपने मुद्दों, अव्यवस्थाओं और समस्याओं के बारे में नहीं सोच सकतीं ? क्यों उनकी चेतना को इतने लंबे समय से अनुशासित व नियंत्रित की जाती रही है ? क्यों वे किसी निर्धारित साँचे में ढली निर्जिव मूर्तियाँ मानी जाती हैं ? क्यों उन्हें परंपरा से बंधी मूक वस्तु समझा जाता है ? क्यों उनकी अपनी कोई पहचान नहीं ? जब इन सवालों का जबाब ढूँढ़ना शुरू हुआ, तब स्त्री अपना अस्तित्व और अधिकार की बात करने लगी। जो पितृसत्तात्मक के सामने एक बड़ा सबाल के रूप में उभरा। सिमोन द बोउआर के अनुसार *"स्त्री पुरूष प्रधान समाज की कृति है। वह अपनी सत्ता को बनाए रखने के लिए स्त्री को जनम से ही अनेक नियमों के ढाँचे में ढालता चला गया। जहाँ उसका व्यक्तित्व दबता चला जाता है।"* राजनैतिक क्षेत्र के साथ-साथ साहित्य में भी स्त्रियों की स्थिति में सुधार हेतु यथेष्ठ प्रयास हुआ है आज भी स्त्रियों की अवस्था में कोई खास परिवर्तन नजर नहीं आता। हिंदी साहित्य में स्त्री-विमर्श की स्थिति काफी महत्वपूर्ण है।

मुख्य शब्दावली : विमर्श, पितृसत्तात्मक, स्त्री-अस्तित्व और सबलता आदि।

विषय-प्रवेश

साहित्य के प्रत्येक विधाओं में स्त्री-विमर्श को विषवस्तु के रूप में लिया गया है। इसी प्रकार हिंदी उपन्यासों में भी स्त्री-विमर्श की बातें की गई हैं। हिन्दी उपन्यास सम्राट मुंशी प्रेचचन्द ने अपने उपन्यासों में स्त्री-विमर्श को यथेष्ठ स्थान दिया है। उन्होंने नारियों के प्रति अपने विचार और दृष्टिकोण को समाज के सामने प्रस्तुत किया है। भारतीय समाज, खास करके उत्तरी भारत के ग्रामीण समाजों नारियों को किस रूप में देखा जाता है, उसका जीवंत चित्रण, प्रेमचंद ने अपने उपन्यासों में किया है।

---

* श्री सिंह हिन्दी केन्द्रीय विभाग, त्रि.वि., कीर्तिपुर में कार्यरत हैं।

प्रेमचन्द (३१ जुलाई १८८०-८ अक्टुबर १९३६) हिंदी और उर्दू के महानतम भारतीय लेखकों में से एक हैं। इनका मूल नाम **धनपत राय श्रीवास्तव** है और इन्हें **नवाब राय** और **मुंशी प्रेमचंद** के नाम से जाना जााता है। ये सिर्फ उपन्यासकार ही नहीं, बल्कि कथाकार, निबंधकार और आलोचक भी हैं। प्रेमचंद ने हिंदी कहानी और उपन्यास की एक ऐसी परंपरा का विकास किया जिसने पूरी सदी के साहित्य का मार्गदर्शन किया।

इनके ग्यारह प्रकाशित तथा एक अप्रकाशित उपन्यास हैं जिनमें **सेवासदन** (सन् १९१८), **प्रेमाश्रम** (१९२२), **रंगभूमि** (१९२५),**निर्मला** (१९२५),**कायाकल्प** (सन् १९२७),**गबन** (१९२८), **प्रतिज्ञा** (सन् १९२९) **कर्मभूमि** (१९३२),**गोदान** (१९३६) और **मंगलसूत्र** (अपूर्ण) आदि प्रमुख हैं। उपन्यास सम्राट और कथा सम्राट के रूप में प्रसिद्धि प्राप्त प्रेमचंद सामाजिक यथार्थ को जीवंतता के साथ रेखांकित करनेवाले उपन्यासकार हैं। इनके **गोदान** (१९३६) को भारतीय ग्राम समाज एवं परिवेश का जीवंत दस्तावेज माना जाता है। इतना ही नहीं, **गोदान** को ग्राम्य जीवन और कृषि संस्कृति का महाकाव्य कहा गया है। इसमें प्रगतिवाद, गांधीवाद और मार्क्सवाद (साम्यवाद) का पूर्ण परिप्रेक्ष्य में चित्रण हुआ है।

वस्तुतः प्रेमचंद एक प्रगतिशील रचनाकार हैं और अपने साहित्य में यथार्थोन्मुख आदर्शवाद की वकालत करते हैं। इन्होंने उपन्यास साहित्य को तिलस्मी और ऐयारी से बाहर निकाल कर उसे वास्तविक भूमि पर लाने का कार्य किया। इन्होंने अपने उपन्यासों में जन साधारण की भावनाओं, परिस्थितियों और उनकी समस्याओं का मार्मिक चित्रण किया। सच कहा जाय तो आज उन पर और उनके साहित्य पर विश्व के उस विशाल जन समूह को गर्व है जो साम्राज्यवाद,पूँजीवाद और सामंतवाद के साथ संघर्ष में जुटा हुआ है। वस्तुतः इन्होने अपने उपन्यासों में स्त्री प्रति के भेद-भाव, स्वतंत्र अस्तित्व, स्वनिर्णय तथा नारी के सशक्त रूप को अपनी लेखनी का विषय-वस्तु बनाया है। इस बात को स्पष्ट करते हेतु डॉ.सुरेश सिन्हा कहते हैं-*"उस नए युग में नारी के ऊपर से उस भौंडे कृत्रिम और अविश्वासपूर्ण आवरण को उतार कर जिसे प्रेमचन्द पूर्व काल के उपन्यासकार ने अपनी एवं कथित आदर्शवादिता एवं सुधारवादिता के जोश में आकर पहना दिया था और जिसके फलस्वरूप नारी का स्वरूप बोझिल हीं नहीं हो गया था। आडंबरपूर्ण और अविवेकपूर्ण भी हो गया था। नारी की आत्मा को उसकी तमाम अच्छाईयों, और बुराईयों के साथ प्रेमचन्द ने पहली बार यर्थाथवादी ढंग से प्रस्तुत करने का प्रयत्न किया।"* (प्रेमचन्द और उनकी नायिकाएँ (डॉ. सुरेश सिन्हा पृ१४५)। मैनेजर पॉडे के कथन द्वारा यह बात स्पष्ट किया जा सकता है - *"बीसवीं सदी के भारतीय समाज के इतिहास की सबसे बड़ी घटना है, अंग्रेजी राज की गुलामी से मुक्ति के लिए, इस देश की जनता का संघर्ष। प्रेमचन्द उस संघर्ष की वास्तविकताओं और संभावनाओं के अन्य कथाकार होने के कारण बीसवीं सदी के प्रतिनिधि कथाकार भी हैं।" बेड़ियों में जकड़े भारत में जिस वक्त चेतना का संचार हुआ*

और परिवर्तन के साथ विकास की लहर उसमें पुरूष के साथ महिला की भी सहभागिता दिखाई पड़ती है प्रेमचन्द के उपन्यास में । (पृ.३०)

समस्या और उद्देश्य

प्रेमचंद के जमाने में समाज की जो रूपरेखा थी और उस सामाजिक रूपरेखा में नारियों की जो अवस्था थी, उसीको प्रेमचंद ने अपने उपन्यासों में चित्रित किया है । लेकिन नारियों की अवस्था कैसी थी ? इसकी पहचान करना एक समस्या है । समस्या यह जानना भी है कि प्रेमचंद के उपन्यासों के नारी पात्रों का चरित्र चित्रण किस रूप में हुआ है ? प्रेमचंद के नारी पात्र किस किस्म के हैं ? मसलन दब्बू, कांतिकारी, विद्रोही या रूढीवादी । यह जानना भी समस्या है । प्रेमचंद के उपन्यासों के नारी पात्रों की समस्या की पहचान कर लेने के बाद उन समस्याओं से निजात पाने के लिए उपन्यासकार के द्वारा दिखाए गए उपायों का रेखांकन इस लेख का उद्देश्य है । कहने का मतलब यह है कि नारियों के प्रति प्रेमचंद का नजरिया कैसा है और वे अपने नारी पात्रों को समाज में किस रूप में देखना चाहते हैं, इसकी पहचान और उल्लेख करना इस आलेख का उद्देश्य है । इतना ही नहीं प्रेमचन्द के उपन्यासों में नारी की सहभागिता किन-किन क्षेत्रों में है ? उनके उपन्यासों के आधार पर नारी की स्थिति,अवस्था और मानसिकता के साथ-साथ सबलता का चित्रण किस प्रकार हुआ है ? इस उपन्यासों में चित्रित नारियों की चारित्रिक विशेषताएँ क्या-क्या है ? और इनकी गतिविधियों से किस प्रकार स्त्री-विमर्श प्रदर्शित हो रहा है ? इन सारे तत्वों को उजागर करना भी इस शोध लेख का उद्देश्य है । प्रेमचन्द के उपन्यास में चित्रित नारी की स्थिति और भूमिका पर संक्षेप में प्रकाश डालते हुए उनकी सहभागिता और अस्तित्व पर एक शोध प्रस्तुत करना इस शोध लेख का उद्देश्य है ।

सामग्री संकलन और विश्लेषण विधि

इस लेख में प्रेमचंद के उपन्यासों में *'स्त्री-विमर्श'* पर केंद्रीत रहके इनमें चित्रित स्त्रियों की राजनैतिक, सामाजिक, आर्थिक तथा आदर्श स्थितियों का विश्लेषण किया गया है । इसलिए इस शोध का प्राथमिक स्रोत उनके मौलिक उपन्यास ही हैं । *'स्त्री-विमर्श'* का इतिहास, अवधारणा, सिद्धांत तथा अन्य दस्तावेजों को द्वितीय सामग्री के रूप में उपयोग किया गया है । इस लेख के लिए आवश्यक सामग्रियों का संकलन पुस्तकालय तथा इंटरनेट से लिया गया है । इसमें मुख्यतः आगमन विधि का ही प्रयोग करते हुए प्रेमचंद के उपन्यासों में *'स्त्री-विमर्श'* का विश्लेषण किया गया है । इसके साथ ही इसकी प्रमाणिकता के लिए द्वितीय विधि के रूप में संदर्भों का उपयोग किया गया है ।

सिद्धांत और अवधारणा की कसौटी पर स्त्री विमर्श

स्त्री विमर्श- स्त्री + विमर्श . स्त्री विमर्श । इन दो शब्दों के योग से 'स्त्री-विमर्श' शब्द की व्युत्पत्ति हुई है । इस शब्द ने स्त्री-जीवन को एक नयी दिशा प्रदान की है । विमर्श

का अर्थ है -*"किसी बात या विषय में किसी निर्णय या निश्चय पर पहुँचाने से पहले की की गई बातचीत।' जब हम कुछ लोगों के साथ बैठकर किसी विषय पर गंभीरतापूर्वक बातें करते हैं, उसके सारे अंगों या पक्षों का उँच-नीच और लाभ-हानी देखते हैं या सब बातें अच्छी तरह सोचते-समझते हैं, तब हमारा यह कार्य विमर्श कहलाता है। विचार निजी होता है। कहने का अर्थ है कि किसी एक व्यक्ति के अकेले की सोच को विचार कहते हैं। परंतु विमर्श में किसी दूसरे व्यक्ति या व्यक्तियों की भी अपेक्षा होती है। आपस में मिलजुल कर और अच्छी तरह सोच समझकर की जाने वाली चर्चा ही विमर्श है।"* हम इसे इस तरह भी रेखांकित कर सकते हैं :

विमर्श को समान्यतः परामर्श, विचार, सलाह के अर्थ में लिया जाता है, परंतु अर्थ में भिन्नता है।

* परामर्शः दूसरों के साथ साझा किये गए विचार या दूसरों से ली गई सलाह-मसबरा हीं परामर्श है।
* विचारः स्वयं किसी बात या विषय के बारे में की गई सोच ही विचार है।
* विमर्शः कई व्यक्तियों के साथ साझा की जाने वाली चर्चा या विचारों को विमर्श कहा जाता है।

"फेमिनिज्म" एक ऐसा शब्द है जो स्त्रीवाद नारीवाद, नारी आंदोलन, स्त्रियों के अधिकारों का समर्थन पुरूषों के बराबर अधिकार पाने का आग्रह करता है। *स्त्री-विमर्श* स्त्री को जागरूक करता है। *"स्त्री-विमर्श* स्त्री आंदोलनों का इतिहास है।" स्त्री-विमर्श स्त्रियों के अधिकारों का समर्थक है। "स्त्री-विमर्श" पुरूषों के बराबर अधिकार पाने का आग्रह करता है। *'स्त्री-विमर्श'* स्त्री को एक इंसान बनाने का कार्य करता है। *'स्त्री विमर्श'* स्त्री पर हो रहे अत्याचार एवं अन्याय के विरूद्ध आंदोलन का कार्य करता है। *स्त्री-विमर्श* गलत व्यवस्था के विरूद्ध आवाज को उठाने को तत्पर होता है। *स्त्री-विमर्श* पुरूष विरोधी नहीं है। *स्त्री-विमर्श* स्त्री के जीवन का नवीन पाठ है। *"स्त्री-विमर्श"* स्त्री की नयी सत्ता का आलेख है। *स्त्री-विमर्श* स्त्रियों के पक्ष की अपील एवं दलील है। *स्त्री-विमर्श* स्त्री के लिए जीने की कला है। *स्त्रीवाद* सैद्धान्तिक विषयों के आधार पर एकमत नहीं है। *स्त्रीवाद* स्त्री को कई बंधनों से मुक्ति दिलाता है। स्त्री की शिक्षा प्राप्त करने का अधिकार, नौकरी करने का अधिकार, पर्दे के बंधंनो को नकारने का अधिकार आदि स्त्रीवाद के अंतर्गत आते है। *स्त्रीवाद* के तीन पक्ष हैं : (क) **स्त्रीवाद** (स्त्री आंदोलन के राजकीय पक्ष), (ख) **नारीत्व** (जैविकीय पक्ष) और (ग) **नारीपन** (सांस्कृतिक पक्ष)।

'नारी-मुक्ति' आंदोलन का प्रस्थान-बिंदु व्यक्ति होने का सलीका है।" अर्थात् आजकल स्त्री विमर्श घर के अंदर और बाहर दोनों ही जगह पर स्त्री के लिए सम्मान और समानता चाहता है। *स्त्री-विमर्श* संबंधी आंदोलनों के समूचे इतिहास के बारे में मेरी वॉल्टन

क्राफ्ट की प्रसिद्ध पुस्तक-*"विन्डी केशन आफ दी राइटस आफ वुमेन"* को आधुनिक काल में सबसे अधिक महत्व दिया जाता है । इसके उपरांत सेंट साइंस, राबर्ट आवेन, फूरियर जैसे युरोपियन समाजवादियों के विचारों से नारीवाद को गति मिली । इनका कहना था कि *'वर्तमान सामाजिक व्यवस्था के अंतर्गत स्त्री को समान अधिकार नहीं मिल सकते है, इसलिए इस व्यवस्था में बदलाव की आवश्यकता है । ' उन्होंने कहा कि उत्पादन कार्यों में महिलाओं को समान भागीदारी के अवसर मिलने चाहिए, और घरेलु कार्यो में भी पुरूषों की सहभागिता होनी चाहिए । स्त्री और पुरूष एक दूसरे के पूरक हैं, किंतु स्त्री के बिना किसी का कोई अस्तित्व नहीं है । ईश्वर ने स्त्री को इस प्रकार बनाया है कि वह संसार के भविष्य की निर्मात्री हो गई । संसार की तरक्की स्त्री के विकास पर हीं निर्भर है ।'* अमेरिका के नारी इतिहास में एक यादगार दिन के रूप में ८ मार्च १८५७ को लिया जाता है । न्यूयार्क के कपड़ा मिलों में काम करनेवाली स्त्रियों ने पहली बार संगठित होकर शोषण के विरूद्ध संघर्ष किया । "विश्व की महिलाओं का यह प्रथम प्रदर्शन, जिसे उस समय के ट्रेड यूनियनों ने भी पसंद नहीं किया । किसी भी प्रकार के समर्थन के अभाव में यह आंदोलन पुलिस द्वारा कुचल दिया गया था । पर महिला इतिहास में एक अमिट छाप छोड़ गया था ।" सन् १९६० के दशक में *"स्त्री विमर्श"* नवजागरण का रूप लेकर सामने आया । इस काल में सीमोन द बोउबार की पुस्तक "द सेकेण्ड सेक्स (१९४२)" ने तहलका मचा दिया इस पुस्तक के द्वारा सीमोन ने नारी मुक्ति का आह्वान किया । उन्होंने कहा "स्त्री को, अमीर हो या गरीब, श्वेत हो या काली अपनी लड़ाई खुद लड़नी होगी । यह दुनिया पुरूषों ने बनाई हैं पर स्त्री से पूछकर नहीं ।"

स्त्री मुक्ति के अर्थ व संदर्भ निरंतर बदलते रहे हैं । इसे कुप्रथाओं या रूढ़ियों तथा अनावश्यक प्रतिबंधो से मुक्ति के अर्थ में परिभाषित किया गया हैं । भारत में स्त्रीवादी आंदोलन १९७० के आस-पास शुरू हुआ । स्त्रीवाद स्त्री-मुक्ति संघर्षों की ही परिणति है । मृणाल पांडे के अनुसार *"नारीवाद पुरूषों का नहीं उनकी मानवीयता घटाने वाले छद्म मुखौटे का प्रतिवाद करता है, जो मर्दानशी के नाम पर गढ़ा गया है और जिसके पीछे झूठी अहमन्यता और उत्पीड़क प्रवृति के अलावा कुछ नही ।"* (मृणाल पांडे, पृ. ९) । *स्त्री-विमर्श* की बात करते हैं तो वह साहित्य हो या कहीं अन्य निम्न बातों पर ध्यान दिया जाता है, जैसे *'स्त्री शिक्षा पर समुचित ध्यान दिया जाना चाहिए', 'स्त्री की सुरक्षा संबंधी कानून बनाया जाए','स्त्री को समाज में समानता का अधिकार हो ','अश्लीलता के खिलाफ आवाज उठायी जाए ','यौन शोषण, पारिवारिक हिंसा के प्रति सजगता अपनायी जाए ' तथा 'दहेज एवं देह- व्यापार और बलात्कारियों को कड़ी से कड़ी सजा मिले ।'*

स्त्री–विमर्श :

आदिकाल से हीं सृष्टि के निर्माण और संचालन में नारी की मूख्य भूमिका रही है । मनुष्य की सभ्यता एवं संस्कृति के विकास का मूल आधार नारी को ही माना जाता है ।

नर और नारी सृष्टि के दो मूलभूत तत्व हैं। दोनों के सहयोग से हीं सृष्टि की रचना होती है। प्रजनन एवं वंश वृद्धि में दोनों का समान रूप से सहभागिता रहती है और यह महत्वपूर्ण कार्य भी है। गर्भाधान से लेकर संतान का जन्म एवं उसके पालन पोषण का कार्य स्त्री ही करती है। इसलिए नारी को सृष्टि का आधार माना गया है। समस्त विश्व की नारी मूल उद्‌भव में शक्ति का प्रतीक है। इतनी विशेषताओं के बाद भी स्त्री को समाज में वह दर्जा नहीं मिला जिसकी वह अधिकारी है। संपूर्ण समाज व्यवस्थाओं का निर्माण पुरूषों द्वारा होने के कारण नारी की भूमिका दोयम दर्जे की रही है। आदिकाल से लेकर आज तक स्त्री द्वारा किए गए प्रगति सहभागिता, त्याग और बलिदान का इतिहास देखने को मिलता है। वैदिक संस्कृति और सभ्यता निर्माण में नारी की महत्वपूर्ण भूमिका रही है।

उस काल में स्त्री के प्रति समान दृष्टिकोण अपनाया जाता था। युवक और युवतियों का प्रेम और मिलन सामान्य बात थी। आशारानी ब्योरा के अनुसार- "धन की देवी लक्ष्मी ज्ञान की देवी सरस्वती और शक्ति की देवी दुर्गा, से क्या अर्थ निकलता है ? अवश्य हीं प्राचीन भारतीय नारी इन सब शक्तियों की अधिकारिणी रही है। ऋग्वेद में सरस्वती को वाक शक्ति कहा गया है। जो उस समय की नारी की कला और विद्वता का परिचायक है। अर्धनारीश्वर कल्पना उसके समान अधिकार की भी पुष्टि करती है।" उत्तर वैदिक काल में मनुष्य का ध्यान आनंद से हटकर तपस्या की और जाने लगा और नारी को सफलता में बाधक मानकर उसकी उपेक्षा की जाने लगी। इस युग में कन्याओं का उपनयन (ब्रतबंध) होता था। उपनिषद और सूत्रकाल में बहुपत्नी प्रथा के कारण परिवारों में विभिन्न वर्णों की स्त्रियाँ एक हीं पुरूष की पत्नी बनकर रहती थी। विवाह के आठों प्रकार इस युग में प्रचलित हो गयी थी। स्त्री शोषण के लिए आज कौन लोग कौन-कौन सी स्थितियाँ दोषी है ? स्वयं नारी उन स्थितियाँ के लिए कितनी जिम्मेदार है ? उनकी सही भूमिका क्या हो कुछ भी तो स्पष्ट नहीं है ?

भारतीय स्त्रियाँ को लेकर देश में और देश के बाहर उनके क्रान्तियाँ फैली हुई है। इसलिए नारी अस्मिता की कोई पहचान नहीं हो पायी। पर यही तो वह लक्ष्य है। स्त्री को द्वितीय दर्जे के नागरीक से उठाकर मानवी रूप में स्थापित करना और मातृपद की खोई प्रतिष्ठा को बापस दिलाना जिसे लेकर हमें चलना है। नारी की शोषण रूकवाने से पहले यह भी जानना जरूरी है। आज जो स्थिति नारी की है वह सामाजिक, पारिवारिक व राजनैतिक कुव्यवस्था के शिकार के कारण है। समय और कालचक्र के परिवर्तन के कारण भी है। हालँ कि वैदिक काल में स्त्रियाँ बहुत हीं सम्मानित थी। वैदिककाल में निश्चित हीं स्त्रियों का व्यक्तित्व सुरक्षित था। वह अपने लिए पति का चुनाव स्वयं करती थी। सीता हो या कुंती अथवा कोई सुकन्या। भारत आजाद होते हीं स्त्रियों की आजादी छीन ली गई थी। विवाह के बाद पति और उसकी संपत्ति पर पूर्णधिकार और पति की हर तरफ से सहायता करती थी, प्राचीन काल की स्त्रियाँ। सम्मानित स्त्रियों में मुख्यतः धोषा,

विश्ववारा उर्वशी सिक्ता, अपला आदि स्त्रियाँ मंत्रद्रष्टायें एवं मैत्रयी सुलभा गार्गी आदि स्त्रियाँ दार्शनिक जगत की अप्रतिम रत्न है । इस काल में कम आयु में स्त्रियों की शादी के कारण शिक्षा की कमी रह गई । छुआछूतवाली समस्या इत्यादि । स्त्रियों का मूख्य कार्य पति सेवा हीं रह गया और उनके अधिन में रहना । स्त्रीवादी विमर्श वह विमर्श है जो स्त्री को मद्धेनजर रखकर लिखा जाता है । और उसी दृष्टिकोण से ही उसका मूल्यांकन किया जाता है । भारतीय समाज पर पाश्चात्य का प्रभाव दिखने लगा है । संक्षेप में नारीवाद आंदोलनों का सबसे बड़ा स्त्री विमर्श की अवधारणा और इतिहास पक्ष यह था कि स्त्री को उपभोग्य वस्तु ना समझी जाए । वह एक जीती जागती नारी है । उसका अपना शरीर और निर्णय के क्षेत्र में अपना अधिकार हो ।

प्रेमचंद के उपन्यासों में स्त्री-विमर्श :

प्रेमचन्द अपने उपन्यासों में नारी को अबला नहीं सबला के रूप में चित्रित करते है । उनके उपन्यासों की नारियाँ पुरूष के साथ पारिवारिक क्षेत्र में हीं नहीं राजनैतिक क्षेत्र में भी सशक्त रूप में अपनी भूमिका निर्वाह करती है । **कर्मभूमि** प्रेमचन्द के लोकप्रिय उपन्यासों में से एक है । **कर्मभूमि** भारत की राजनैतिक पृष्ठभूमि पर रचित एक सफल उपन्यास है । भारत पर अंग्रेज शासन के हुकुमत के विरोध में इस उपन्यास के पुरूष पात्र हीं नहीं महिला पात्र भी सहभागी है । प्रेमचन्द जी इस उपन्यास में नारी की सुकोमलता और नारी सौंदर्य के स्थान पर पुरूष के साथ कदम से कदम मिलाकर चलने वाली संघर्षशील और कर्मठ महिला की छवि को ज्यादा उभारने में सफल रहे हैं । इस उपन्यास की महिला पात्रा सुखदा सुख-सुविधा में पली-बढ़ी सभ्य, सुशिक्षित महिला अपने पति को सौंदर्य और प्रेम के मोहपाश में नहीं बाँध पाती, वहीं दूसरी ओर साधारण शक्ल सूरतवाली कर्मठ नारी इस उपन्यास के नायक अमरकांत को आकर्षित करती है । और जब सुखदा अपने इस दिनचर्या छोड़कर एक सामान्य नारी की जिन्दगी जिती है, तब वह समाज कल्याण और आत्म शक्ति के रूप में उभरा कर एक प्रभावशाली व्यक्तित्व बनती है । स्वतंत्रता आंदोलन में पुरूषों के साथ जेल जाना सुखदा का व्यक्तित्व नारी सशक्तिकरण नहीं तो और क्या है ? राजनैतिक क्षेत्र में भी प्रेमचन्द युगीन नारियों की दखल है । जिसका उदाहरण **गबन** की जलपा और **रंगभूमि** की सोफिया है ।

गबन की जलपा एक ओर उसका पति को सर्वस्व मानती है तो दूसरी ओर क्रांतिकारी रूप में है । वह एक ऐसा सबल चरित्र के उदाहरण के रूप में है जो बिना झगड़े तत्परता और बहादूरी से जिन्दगी की जद्धोजहद से जुझती है । रीतिरिवाज अंधविश्वास और संस्कारों को नकारते हुये ज्ञान के उदात्त रूप को अपनाती है । जालपा का यह रूप प्रेमचन्द की दृष्टि के विकास का परिचायक है । **रंगभूमि** की सोफिया, इस उपन्यास में एक दबंग छवि के रूप में है । वह एक ऐसी नारी है जो राजनीति में बढ़-चढ कर हिस्सा लेती है । **रंगभूमि** (१९२४–१९२५) एक ऐसा उपन्यास हैं जिसमें पूरा भारत के आम जनमानस

की गाथा चित्रांकित है। विषम मानवीय भावना और समय के अनंत विस्तार तक जाती इनकी रचनाएँ इतिहास की सीमाओं को तोड़ती है। और कालजयी कृतियों में गिनी जाती है। **रंगभूमि** में नौकरशाही तथा पूँजीवाद के साथ जनसंघर्ष का ताण्डव, सत्य, निष्ठा और अहिंसा के प्रति आग्रह ग्रामीण जीवन में उपस्थित मध्यपान तथा दुर्दशा का भयावह चित्र यहाँ अंकित है। यह उपन्यास भारत की राजनैतिक, समाजिक और आर्थिक परिस्थिति का आधार बनाकर रचित है। जिसमें बहुत सारे पात्र हैं। मूख्य रूप से मिस सोफिया एक ऐसी महिला पात्रा है जो सहज हीं पाठक का आकर्षण का केंद्र बन जाती है। वह एक खूबसूरत अत्याधुनिक महिला हैं जो धर्म पर तो विश्वास करती हैं परंतु अंधविश्वासी नहीं है। वह धर्म, त्याग और सद्धिचार का अवतार है। प्रेमचन्द की लेखनी में प्राय सामाजिक विषय-वस्तु को ही ज्यादा स्थान मिला है। जिसमे नारी समस्याओं को ज्यादा दिखलाया गया है। राजनैतिक क्षेत्र के अलावा सामाजिक स्तर पर भी उनके उपन्यास की पात्राएँ अधिक सशक्त दिखती है। संघर्षरत एवं मेहनतकश नारियाँ प्रेमचन्द के साहित्य की जान है। अपने जीवन को सुखी सम्पन्न एवं स्वतन्त्र बनाने के लिए यथा–संभव प्रयास करती है। **गोदान** की धनिया सशक्त इरादे की निडर और धैर्यवान स्त्री है। यथासंभव परि स्थितिवश विरोध और विद्रोह का साहस रखती है। इसी उपन्यास की नारी पात्र भुनिया सामाजिक नियमों को चुनौति देती हुई प्यार के बाद शादी का फैसला करती है। पुरुष से ज्यादा उसमें हिम्मत है और सशक्त पात्र के रुप में प्रस्तुत होती है। वह खुद सास–ससुर से अपनी शादी की बात करती है। इतना हीं नहीं भुनियाँ गर्भावस्था में ताड़ी पी कर आए गोबर की प्रताड़ना का शिकार होती है। फिर भी हड़ताल में घायल गोबर की जी–जान से सेवा कर उस स्वस्थ करती है। यह स्त्री–पुरूष के बीच के संबंधों को सामाजिक स्तर पर भी मर्यादित दिखाता है।

जहाँ एक ओर आर्दशवादिता को ओढ़े ग्राम्य समाज का ये किसान वर्ग लड़ते–लड़ते ही मर जाता है। वहीं उनकी औरतें रोते कलपते हिम्मत बांधे जिन्दगी जीती है एवं परिस्थिति से समभौते करती है व हर हाल में संतुष्ट रहती है। इस उपन्यास के अन्तिम दृश्य में लेखक साक्षात सच्चाई प्रस्तुत कर देते हैं। माहाराज घर न गाय है, न बछिया न पैसा, यही पैसे है। यही इनका गोदान (पृ.३६१)। इसमें धनिया एक निम्न वर्गीय नारी पात्र है, जो परिवार की खुशी के लिए जी–जान से प्रयासरत रहती है सामाजिक और पारिवारिक स्तर पर सशक्त और आदर्शवादी महिला के रुप में एक अलग छाप छोड़ती है। **सेवासदन** की नारी पात्रा सामाजिक बिडम्बना और आडम्बरों को तोड़कर नारी पाराधीनता का अंत और नारी स्वाधीनता की शुरुआत करती है। बेमेल विवाह और दहेज प्रथा की शिकार सुमन का चरित्र आदर्शवाद से अधिक यथार्थवाद के रूप में पाठक के सामने आता है सुमन पारिवारिक व सामाजिक विसंगति की शिकार पति की प्रताड़ना को सहते–सहते एक दिन घर छोड़ देती है। घर छोड़ने के बाद वह कराईयों से अपने आप को बचाकर **सेवासदन**

आश्रम को चलाती है और समाज में एक आदर्शवाद की स्थापना कर सशक्त पात्रा के रूप में अलग छाप छोड़ती है। प्रेमचन्द युगीन समाज में नारी पूरी तरह पुरूष के अधीन में रही। यह वो दौर था जब पति की संपत्ति पर पत्नी का हक न था। पति के मरते ही पत्नियाँ जायदाद से बेदखल हो जाया करती थी। यह बात कहने के लिए बुरी लगती है। किंतु अक्षरश सत्य है। प्रेमचन्द ने विधवा समस्या को भी अपने उपन्यास में बार–बार दिखलाया है। समाज का सबसे बड़ा मुद्दा जो हर वर्ग की स्त्री के सम्मुख प्रस्तुत है । गबन में विधवा रतन कहती है –*"जाने किस पापी ने यह कानून बनाया था कि पति के मरते ही हिन्दू नारी इस प्रकार स्वत्व–वंचिता हो जाती है* (गबन पृ.३३७) वैधव्य के कई उदाहरण उनके उपन्यास में जिसकी वजह से नारी आश्रम विहीन आर्थिक मामले में वंचित अपनी इच्छाओं को मारती है। वरदान में वृजरानी वैधव्य की शिकार होते हुये प्रताप के प्रेम में पड़ कर भी विवाह नहीं कर सकती। उपन्यासों में कल्याणी रतन, रेणुका देवी ऐसी विधवाएँ हैं, जिन्हें वैधत्व से कोई शिकायत नहीं। विरंजन (**वरदान**) गायत्री (**प्रेमाश्रम**), बागेश्वरी (**कायाकल्प**), कल्याणी (**निर्मला**), रुक्मिणी (**निर्मला**) रतन (**गबन**) और रेणुका देवी (**कर्मभूमि**), ये ऐसी स्त्रियाँ हैं, जिन्होंने विधवा जीवन स्वीकारते हुये उन्हें जीया है।

आर्थिक निर्भरता ने स्त्री को समाज में गुलामी से जीने पर मजबूर कर दिया है। **मंगलसूत्र** में प्रेमचन्द नारी के आश्रिता और उसके विरोध के मुद्धे को दर्शाते हैं। संतकुमार अपनी पत्नी पुष्पा से कहते हैं–जो स्त्री पुरुष पर अवलंबित है उसे पुरुष की हुकूमत माननी पड़ेगी। (मंगलसूत्र, पृ.१०) इस उपन्यास की नारी पात्र का जबाब तत्काली समाज में नारी की स्थिति और उसका विरोध बयान करता है। *'अगर मैं तुम्हारी आश्रिता हूँ तो तुम भी मेरे आश्रित हो। मैं तुम्हारे घर में जितना काम करती हूँ उतना हीं काम दूसरों के घर में करूँ तो अपना निर्वाह कर सकती हूँ या नहीं बोलो ? तब मैं जो कमाऊँगी वो मेरा होगा। यहाँ मैं चाहे प्राण भी दे हूँ पर मेरा किसी भी चीज पर अधिकार नहीं। तुम जब चाहो मुझे घर से निकाल सकते हो।* (मंगलसूत्र प..१२)। यह स्त्री का स्वाभिमान और स्वाधीनता पर पुरुष प्रधान समाज द्वारा एक करारा तमाचा है जिसका प्रत्यक्ष कारण स्त्री की निर्भरता पुरूष के उपर है। प्रेमचन्द स्त्री के आर्थिक स्वतंत्रता एवं विकास के पक्षधर हैं किन्तु पश्चिमी सभ्यता के अनुकरण को नकारते है। पाश्चात्य देशों के वैवाहिक संबंधों में तलाक, स्वच्छन्दता विरोध, विद्रोह और व्यावहारिकता का अनुकरण की जो भावना भारत की कुछ उच्च शिक्षित पश्चिम से प्रभावित नारी में जागृत हो रही थी,उसे वे चिंता का विषय मानते थे। **'गोदान'** की मिस मालती का व्यंग्यपूर्ण परिचय हम देख सकते हैं –*"आज नवयुग की साक्षात प्रतिभा हैं गाल कोमल पर चपलता कूट–कूट कर भरी हुई, झिझक या संकोच का कहीं नाम नहीं।"*

उपन्यास सम्राट प्रेमचन्द ने स्त्री विमर्श पर खुलकर और जोरदार रूप से कलम चलाई है अपने उपन्यासों में। स्त्री को पुरुष की साथी होना चाहिए न की सेविका। यह

स्थिति काफी दिनों तक समझी नहीं जा सकी या स्त्रियों में स्वीकारने की हिम्मत नहीं थी। **कायाकल्प** में नायक की स्त्री पूछती है, *'नारी के लिए पुरुष सेवा से बढ़कर और कोई विलास, भोग एवं श्रृगांर नहीं है परंतु कौन कह सकता है कि नारी का यह त्याग उसकी यह सेवा भाव हीं आज उसके अपमान का कारण नहीं हो रहा है ?* (कायाकल्प पृ.४४४) यहाँ ये साफ नजर आता है कि नारी के आदर्श रुप का पुरूषों द्वारा इस्तेमाल किया जाता रहा है। प्रेमचन्द जो इशारा कर गए थे, वह आज के नारी समाज में आर्थिक रुप से स्वतंत्र होने के बदलाब परिलक्षित होते है। इस बात को नाकार नहीं जा सकता है कि प्रेमचन्द अपने उपन्यासों में पात्रों का चरित्र–चित्रण आदर्शवाद को स्थान में रखते हुए यर्थाथ स्थिति का चित्रण करते थे।

उनका मानना है कि –*ऐसे निर्दोष चरित्र तो देवता हो जाएँगे। और हम उन्हें समझ न सकेंगे। अतः चरित्रों को उत्कृष्ट तथा आदर्श बनाने के लिए जरुरी भी है, उनमें कमजोरियाँ भी हो। क्योंकि महान से महान व्यक्तियों में भी कमजोरियाँ होती है और वे ही उन्हें मनुष्य बनाती है।'* स्त्री और पुरूष दोनों के लिए सामाजिक नियम एक समान है प्रेमचन्द की दृष्टि में। जिस कार्य में पुरूष और स्त्री दोनों समान रूप से सहभागी हैं तो परिणाम में भी दोनों समान रुप से सहभागी होनी चाहिए। पुरूष निष्कलंक सचरित्र देवता और स्त्री कलंकिनी और पापिनी कदापि नहीं हो सकती। स्त्री को अगर सच्चा प्रेम मिल जाए तो उसमें सहज हीं सुधार आ जाता है। ये उनके नारी पात्रों में झलकता है। **'गबन'** की वेश्या जोहरा और **'गोदान'** की तितलीनुमा सोसायटी लेडी मिस मालती ऐसी हीं स्त्रियाँ है। वेश्यावृति की समस्या पर प्रेमचन्द की भावनाएँ कोमल रही है। उनकी आवधारणा रही है, इस तरह की महिलाएँ समाज द्वारा ठुकराई हुई होती है। बेहतर जिन्दगी का मौका मिले तो वेश्यावृति उनकी पसंद हरगिज नहीं होगी। **'सेवासदन'** इनका ज्वलंत उदाहरण है। इस उपन्यास में प्रेमचन्द जी ने वेश्यावृति जो दहेज का दुष्परिणाम है को प्रस्तुत किया है साथ हीं साथ स्त्री की उन कोमल भावनाओं से हमें अवगत करवाया है। जो उनके बदलाव के कारण सुमन अपने आपको वेश्यावृति की आग में झोंक देती है। इसके पीछे घर में पति द्वारा सुमन का अपमान हीं कारण दीखता है। यहाँ प्रेमचन्द उन तथ्यों को उजागर करते हैं कि निम्न से निम्न स्तर के कार्य में संलग्न व्यक्ति भी मान चाहता है सम्मान चाहता है आदर चाहता है। तो स्त्री का घर में आदर–सम्मान क्यों नहीं ? यहाँ प्रेमचन्द स्त्री के पक्षधर हैं। निर्मला में निर्मला का विवाह ४५ वर्ष के तोताराम से हो जाता है। निर्मला में सिर्फ १५ वर्ष की बालिका समाज के खोखले आदर्शों को ढ़ोती अच्छे खानदान की खातिर अपनी इच्छाओं और अरमानों को गला घोटती हैं और पत्नी होने का धर्म और आदर्श के भी निर्वाह करती है।

'साहित्य की स्त्री दृष्टि' पदबंध साहित्यिक परिदृष्य में रचयित एंव पाठक के रूप में पुरूष के समानान्तर स्त्री की सक्रिय उपस्थिति का स्वीकार है। यह साहित्य पाठ की

दो दृष्टियों को प्रस्तावित करता है । एक -पुरूष रचनाकारो द्वारा स्त्री को देखे समझे-चित्रित किये जाने की पारंपरिक दृष्टि जो रचनाओं में पात्र अथवा सूक्ति बनकर उभरती है । और प्रकारान्तर से समाजिक व्यवस्था को पुष्ट करती है जैसे- कबीर एंव तुलसी की स्त्री विरोधी उक्तियाँ प्रेमचन्द द्वारा आधुनिक एंव चेतना स्त्री अस्तित्व को सही सन्दर्भ में चित्रित ना कर पाने की अक्षमता । इस दृष्टि के केन्द्र में पितृसत्तात्मक व्यवस्था रहती है । अतः पोषित करता है । साहित्य पाठ की दूसरी दृष्टि स्त्रियों द्वारा स्त्री, पुरूष, समय, समाज और साहित्य को विश्लेषित करने और इनके अंतर संबंध को गुनने की दृष्टि है । यह दृष्टि रचना और पाठ के दौरान निरन्तर दृढ़ग्रस्त दिखाई देती है । पितृसत्तात्मक व्यवस्था के संस्कार उसकी सोंच और भाषा की अनुकूलित भी करते हैं । और मनुष्य के तौर पर अर्जित चेतना उन संस्कारों के विरोध में जाकर नई जमीन तोड़ने का आग्रह भी करती है । यह दृष्टि आत्मान्वेषण की हकुलाहट से बंधी है जो लैंगिक विभाजन के इर्न- गिर्द बुन दी गई ।

स्त्री पुरूष की भूमिकाओं और रूढ़ छवियों को निरन्तर चुनौती देती है । यस प्रकार साहित्य की स्त्री दृष्टि पूर्ण रूप में साहित्य के बहाने समाज की संरचनाओं को नये सिरे से पढ़ने का एक दृष्टिकोण है ।

हिन्दी साहित्य में स्त्री-विमर्श को लेकर पुरूष लेखकों और महिला लेखिकाओं के लेखन से इस विमर्श को पुष्ट रूप मिला है । लेखक और लेखिकाओं के द्वारा कहानी और उपन्यासों में स्त्री की पारिवारिक, सामाजिक और राजनैतिक भूमिका को लेकर काफी रोचक और जिवंत चरित्रों के माध्यम से स्त्री-विमर्श को दिखलाने का प्रयास हुआ है । हिन्दी साहित्य में सबसे प्रथम उपन्यास भाग्यवती (सन् १८०१ में) श्रद्धाराम फिलौरी द्वारा लिखित में स्त्री विमर्श का रूप सामने आता है । इसके बाद महादेवी वर्मा द्वारा लिखित 'श्रृंखला की कड़िया' में देखने को मिलता है । 'श्रृंखला की कड़िया' नामक निबंध संग्रह में उनके द्वारा व्यक्त विचार वर्तमान स्त्री लेखन को एक रचनात्मक उर्जा प्रदान करते है । महादेवी वर्मा द्वारा स्त्री का स्वरूप को इस तरह व्याख्या की गई है । महादेवी वर्मा-"आज हमारी परिस्थिति कुछ और ही है । स्त्री न घर का अलंकार मात्र बनकर रहना चाहती है और न ही देवता की मूर्ति बनकर प्राण-प्रतिष्ठा चाहती है । कारण वह जान गयी है कि एक का अर्थ अन्य कि शोभा बढ़ाना है । और उपयोग न रहने पर फेंक दिया जाना है और दूसरे का अभिप्राय दूर से उस पुजापे को देखते रहना है, जिसे उसे न दे कर उसी के नाम पर लोग बाँटलेंगे ।" पुनर्जागरण और आंदोलन के दौर में एक दो रचनाकारों के रचना में देखने को मिला परंतु अपनी विशिष्ट पहचान बनाने में असफल रही ।

हालाँकि प्रेमचन्द के लेखनी में स्त्री-विमर्श की प्रमुखता दिखती है । खासकर के प्रेमचन्द के उपन्यासों में स्त्री विमर्श को दिखाना इस शोध का उदेश्य है परन्तु इनसे पहले के लेखकों के उपन्यास में भी स्त्री विमर्श विद्यमान है । जिसे निम्नलिखित चरणों में बाँटकर दिखलाने की एक कोशिश है । इस युग के उपन्यासकारों का ध्यान पहली बार

स्त्रियों की सामाजिक दशा की ओर आकृष्ट हुआ । स्वयं भारतेन्दु और इस युग के अन्य उपन्यासकार भारतीय स्त्री की दयनीय स्थिति से परिचित थे । वे उनकी स्थिति में लाने के पक्षधर थे । उन्होंने पाश्चात्य नारी की दुगुणों को छोड़कर अच्छे गुणों की सराहना की और भारतीय नारी को आगे बढ़ने की प्रेरणा दी । इनके बाद के लेखकों में इनकी जैसी नवीन दृष्टि नहीं है । उन्होंने नारी की ततकालीन समस्याएँ-बाल-विवाह, अनमेल विवाह, विधवा विवाह और वेश्या को वर्णय विषय को बनाया है । किन्तु इनका चित्रण और सामाधान प्राचीन मान्यताओं के अनुसार हीं किया है । द्विवेदी युगीन उपन्यासकारों का प्रमुख उदेश्य सामाजिक कुरीतियों को सामने लाकर उनका विरोध करना हीं द्विवेदी युगीन उपन्यासकारों का प्रमुख लक्ष्य रहा है । हरिऔध का 'अधखिला फूल' एक सफल उपन्यास है स्त्री-विमर्श के क्षेत्र में । इसमे नारी जीवन की अनेक समस्याओं को चित्रित किया गया है । पं लज्जाराम मेहता के उपन्यासों भी स्त्री को पर्याप्त महत्व प्राप्त हुआ है । प्रेमचन्द युग में विचार के क्षेत्र में संक्राति और संघर्ष का काल था । परंपरा और नए जीवनदर्शों में द्वन्द है । इसी में संधि की भावना है । यर्थाथ जीवन की ज्वंलत समस्याओं को अपना प्रतिषाध बनाने पर भी प्रेमचन्द युगीन लेखन परंपरागत भारतीय जीवन मूल्यों के प्रति अपने मोह को छेड़ नहीं सके और उनकी परिणति आदर्शोन्मुख यर्थाथवाद में की ।

प्रेमचंद द्वारा लिखित दर्जनों उपन्यास जिनमें प्राय: भरतीय नारी की दुर्दशा तो कहीं सबलता तो कहीं सशक्त रूप और तो कहीं समाज में व्याप्त रूढ़ियों को तोड़कर समाज में एक नयाँ आदर्श को स्थापित करती दृढ़ छवि वाला रूप व्याप्त । जयशंकर प्रसाद के उपन्यास 'ध्रुव स्वामिनी', 'स्त्री विमर्श' का सबसे जीता जागता उदाहरण हे । इस उपन्यास में ध्रुव स्वामिनी के पति जीवित रहते हीं उनका विवाह उनकी मनपसंद के पुरूष चंदगुप्त से करने की वकालत करते है । भगवतीचरण वर्मा के 'भूले बिसरे चित्र' में भी भारतीय नारी की जागरूकता का चित्रण है । संबंध विच्छेद के बाद आत्म निर्णय के साथ अपना जीवन बसर करना भारतीय नारी की सशक्तीकरण का एक जीता-जागता उदाहरण है ।

स्त्री विमर्श के क्षेत्र में प्रेमचन्द युग के बाद इस युग का काफी योगदान रहा है स्त्री – विमर्श को पुष्ट रूप देने में, इस युग में बहुत अधिक लेखक और लेखिकाओं के रचनाओं से स्त्री–विमर्श का रूप स्पष्ट झलकता है । जैनेन्द्र के मनोविश्लेषण उपन्यास सुनीता, कल्याणी आदि सभी में स्त्री पात्रों का अंर्तद्वन्द चरम पर है । जैनेन्द्र अपने उपन्यासों में आंतरिक जगत का विश्लेषण करते हुये स्त्री की समस्याओं व उसकी भिन्न रूप में उपस्थित करते है । अज्ञेय की 'शेखर एक जीवनी' दो भागों में विभाजित उपन्यास है । जिसके दो भागों में महिला पात्रा शशि का चरित्र अत्यंत महत्वपूर्ण है । अज्ञेय के 'नदी के द्वीप' की रेखा महिला पात्रा प्रखर, तेजस्विनी अति बौद्धिक उच्च शिक्षित और सक्रिय नारी चरित्र है । वह सही अर्थों में आधुनिक नारी है । सबल, समर्थ, संतुलित और संकल्पयुक्त ।

फणेश्वरनाथ रेणु का 'मैला आँचल' और 'परती परिकथा' इस युग के प्रमुख आंचलिक उपन्यास है। इस उपन्यास की महिलाएँ अपनी इच्छा को महत्व देती है। इस युग में बड़ी संख्याओं में लेखिकाएँ जैसे कृष्ण सो बती मन्नु भंडारी पलमा सच देवा, मृदुला गर्ग, उषा प्रियंवदा, मृणाल पांडे, चित्रा मुग्दल मैत्रयी पुष्पा, नासिरा शर्मा, प्रेमा खेतान, गीतांजलि श्री मनीषा, जयंती आदि महिला मुद्धों पर अपनी कलम धारा प्रवाह चलाई हैं। लेखन के क्षेत्र में स्त्रियों का पदार्पण भले ही देर से हुआ हो, किंतु उनकी सृजनशीलता अत्यंत प्राचीन है। जब वे साक्षर नहीं थी तब मौखिक रूप से उनकी रचनाएँ पीढ़ी दर पीढ़ी लोकगीत के रूप में एक चलना एक अनुपम उदाहरण है। आधुनिक काल से पूर्व और आधुनिक काल के लेखक और लेखिकाओं के रचनाओं से हिन्दी साहित्य में स्त्री–विमर्श का पदार्पण हुआ जिनमें उपन्यासों का प्रमुख स्थान रहा हैं। प्रेमचन्द के उपन्यास इसका एक ज्वंलत उदाहरण है।

निष्कर्ष

हालाँकि प्रेमचन्द युगीन समाज में नारी पूरी तरह पुरूष के अधीन रही। ये वो दौर था जब शारीरिक सुंदरता ,निर्बलता एवं उसके दैवीय गुणों का महिमा मंडित कर नारी को बल पूर्वक घर में बंद रहने पर मजबूर किया गया है। यही कारण है कि परिवार में पुरूष वर्ग का पूर्णरूपेण अधिकार रहा। वहीं स्त्री अपने पारिवारिक स्थान से गिरते हुये शिघ्र हीं गुलाम बन गई। पुरूष वर्ग द्वारा नारी की उपेक्षा होने लगी। यह स्थिति काफी दिनों तक नाजुक रही। स्त्री को पुरूष की साथी होनी चाहिए, न कि सेविका पर इस बात को स्वीकारने की मनस्थिति ना पुरूषों में थी और ना हीं स्त्रियों मे हिम्मत थी। आर्थिक निर्भरता ने भी स्त्री को समाज में गुलामी से जीने पर मजबूर कर दिया था। इसी यर्थाथ स्थिति के सुधार हेतु प्रेमचन्द द्वारा अनेकों प्रयास हुआ हैं साहित्य के क्षेत्र में। प्रेमचन्द अपने उपन्यासों में स्त्री का दर्जा पुरूषों से ऊपर देते हैं। जिस युग में नारी को देवी स्वरूप समझा जाना चाहिए, उस युग में नारी अपहेलित, शोषित और दासी तुल्य थी। युग स्रष्टा और युग द्रष्टा प्रेमचन्द स्त्री के गुणों के कारण हीं पुरूष से श्रेष्ठ स्त्री को मानते हैं। त्याग और वात्सल्य की मूर्ति नारी के जीवन का वास्तविक आधार प्रेम है। इसलिए वह सम्मानिय भी है। उनके उपन्यास में नारी पात्राएँ सिर्फ काल्पनिक हीं नहीं है, अपितु तत्कालीन भारतीय नारी समाज के प्रतिनिधि के रूप में भी है।

प्रेमचन्द के उपन्यासों की नारी पात्रों ने पर्दा प्रथा, अनमेल विवाह, दहेज प्रथा आदि कई समस्याओं को भोगा है। उन्हें जिया है और सवाल भी उठाए हैं। अनमेल विवाह हुए स्त्री अपमानित होती रही। नौकरानियों से भी निम्नस्तर व्यवहार उनके साथ किया गया। समाज में बेटियाँ बोझ महसूस की गई। यह सारा कुरितियां हमें प्रेमचन्द के साहित्य में नजर आता है। प्रेमचन्द ने नारी की स्थिति सुधारने के लिए उसका आत्मनिर्भर होना स्वीकार है। प्रेमचन्द के उपन्यासों में नारी पात्राएँ प्रेमिका, बिधवा, माता, परिणीता

मेहनतकश, वेश्या और समाज सेविका आदि कई रूपों में अपनी अमिट छाप छोड़ती है । जहाँ वर्तमान और भूतकाल की विषम स्थिति के दर्शन उनके उपन्यासों में होते हैं वहीं भविष्य को भी काफी आगे तक देखा गया है । अतः उनके उपन्यासों में नारी पात्रा स्त्री विमर्श का ज्वलंत उदाहरण प्रस्तुत करने में सक्षम साबित होती है ।

संदर्भ सामग्री सूची

सिमोन, वी. (१९४९), *द सेकेण्ड सेक्स,* फ्रांस ।

दास, आर. (२०१६), *अनभाई.कम* ।

प्रेमचन्द, (१९३६), *गोदान,* इलाहावादः हंस प्रकाशन ।

- - -, (१९३१), *गबन,* इलाहावादः हंस प्रकाशन, ।

- - -, *मंगलसूत्र* अप्रकाशित, इलाहावादः हंस प्रकाशन, ।

गोयनका, के. के. (१९६२), *प्रेमचन्द कहानी रचनावली* (खण्ड–३), नई दिल्लीः साहित्य अकादमी ।

खेतान, पी. (१९९०), *स्त्री उपेक्षिता,* दिल्लीः हिन्दी पॉकेट बुक्स, ।